कृषि पारिस्थितिकी बनाम जलवायु की उथल–पुथल : एशिया में संघर्ष का नेतृत्व करते किसान

धातु के बर्तन बजाकर टिड्डियों को खेतों से भगाती महिला किसान। फोटो: गाँव कनेक्शन

जैसे–जैसे दुनिया में प्राकृतिक तबाहियाँ बढ़ती जा रही हैं, वैसे–वैसे अपनी क्षतिग्रस्त जलवायु को ठीक करने के बढ़–चढ़ कर किये जाने वाले दावों की होड़ भी बढ़ती जा रही है। दुनिया के अधिकांश अंतरराष्ट्रीय मंचों पर जलवायु परिवर्तन एक बड़ा मुद्दा बन चुका है। इसकी वजह भी कोई छोटी–मोटी नहीं है: वर्ष 2019 में सारी दुनिया में जलवायु संकट से सीधे तौर पर जुड़े मौसम के बदलावों और प्राकृतिक विनाश लीलाओं से 232 अरब अमेरिकी डॉलर का आर्थिक नुकसान हुआ।[1] जलवायु संकट के कारण इसका क़रीब आधा नुकसान, यानि 107 अरब डॉलर, अकेले एशिया और ओशनिया महाद्वीपों में ही हुआ।[2] लेकिन यह स्थिति जितनी खराब है, उसके लिए ऊपर से सुझाए जा रहे समाधान उतने ही भ्रमित करने वाले हैं। न केवल वे हमें सही रास्ते पर नहीं ले जा रहे बल्कि उनकी वजह से गरीबी से लेकर जैव विविधता को नुकसान पहुँचने जैसी अनेक समस्याएँ बद से बदतर होती जा रही हैं। दरअसल यह समाधान विशिष्ट अधिकार सम्पन्न कॉर्पोरेट क्षेत्र को वित्तीय मुनाफा पहुँचा रहे हैं। "जलवायु स्मार्ट कृषि" (क्लाइमेट स्मार्ट एग्रीकल्चर – सी.एस.ए.) एक ऐसा ही उदाहरण है।

अच्छी बात यह है कि जलवायु की विनाशकारी घटनाओं के सामने सबसे पहली पंक्ति में मौजूद एशिया के अलग–अलग हिस्सों में बहुत से किसान पिछले अनेक वर्षों से ऐसे कारगर समाधान सामने लाये हैं जो उनकी सामाजिक–आर्थिक परिस्तिथियों और कृषि परंपराओं के अनुकूल हैं। उनका नजरिया जलवायु परिवर्तन के अनुकूल होने के साथ ही यह ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने तथा अपने समुदायों को मजबूत

बनाने में भी सक्षम है। यहां हम उनके अनुभवों को साझा कर यह रेखांकित करना चाहते हैं कि कैसे समूचे एशिया में पारिस्थितकी कृषि और जैव विविधता पर आधारित भोजन–तंत्र जलवायु बदलाव से कामयाबी से निपटने की कुंजी हैं।

जलवायु संकट व एशिया में उसके असर

कृषि बहुत हद तक जलवायु पर निर्भर करती है। जब जलवायु बदलती है तो वह पारिस्थितिकी तंत्र को भी प्रभावित करती है। तापमान, आर्द्रता व सूरज की रौशनी में आने वाले बदलाव खेती की जमीन, पशुधन और जलस्रोतों की स्थिति पर असर डालते हैं। डोमिनो प्रभाव से जलवायु में होने वाले बदलाव घटनाओं की एक ऐसी कड़ी शुरू करते हैं जो पौधों में फूल आने से लेकर कटाई के मौसम पर, खेतों में नमी के संतुलन पर और कीड़ों के हमलों की तीव्रता पर, यानि शुरू से आखिर तक सभी चीजों पर असर डालती है। तापमान बढ़ने का असर भूजल स्तर पर, पानी के तापमान पर और भूजल की गुणवत्ता पर पड़ता है। इन सब का मिला–जुला असर भोजन उत्पादन की उपज और उसकी गुणवत्ता पर पड़ता है जिससे आगे ग्रामीण अर्थव्यवस्था, किसान परिवारों की आमदनी और पूरे देश का राजस्व प्रभावित होता है। उदाहरण के लिए भारत के आर्थिक सर्वेक्षण में जलवायु परिवर्तन की वजह से खेती से होने वाली सालाना आमदनी औसतन 15 से 18 प्रतिशत तक कम हो सकती है। असिंचित क्षेत्रों में यह कमी 25 प्रतिशत तक हो सकती है।[3]

सिर्फ़ भारत पर ही नहीं, ग्लोबल वार्मिंग का विश्व में सबसे ज़्यादा असर एशिया के पूरे क्षेत्र पर होता है।[4] जलवायु के बदलावों से होने वाले प्रभावों के बारे में विभिन्न देशों की सरकारों की संयुक्त संस्था इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज (आई.पी.सी.सी.) ने आगाह किया है कि बार–बार ज़्यादा तीव्रता से आने वाली ऊष्मा तरंगों (हीट वेव्स) से एशिया में कमज़ोर समूहों में मृत्यु दर व रोगों की संख्या में वृद्धि होगी। बार–बार बाढ़ व सूखे के कारण चावल की खेती पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेंगे जिससे एशिया के कुछ हिस्सों में व ग्रामीण इलाकों में गरीबी और बढ़ेगी।[5]

चीन के पास दुनिया की खेती की ज़मीन का मात्र 8 प्रतिशत हिस्सा है जिससे वो दुनिया की 20 प्रतिशत आबादी का पेट भरता है। चीन में भी जलवायु में परिवर्तन के साथ इसके उत्तरी और दक्षिणी इलाकों में जलापूर्ति में संतुलन का बिगड़ना महसूस किया जा रहा है जिससे इन इलाकों की नमी में भी काफी बदलाव आया है। इसके कारण चीन को भी जलवायु परिवर्तन के तीव्र प्रभावों को बार–बार झेलना पड़ रहा है।[6] चीन विश्व के कुल अनाज का 18 प्रतिशत, माँस का 29 प्रतिशत और हरी सब्जियों का लगभग 50 प्रतिशत उत्पादन करता है, लेकिन वह साथ ही बड़ी मात्रा में विश्व बाजार से पशुओं के भोजन का आयात भी करता है। जलवायु परिवर्तन से न केवल चीन की कृषि और व्यापक तौर पर उसकी खाद्य सुरक्षा प्रभावित होगी, बल्कि इसके असर से खाद्य पदार्थों की वैश्विक कीमतों में भी भारी उथल–पुथल होगी।

एशिया में कोई भी देश जलवायु की आपदाओं से अछूता नहीं है। इस क्षेत्र में खाद्य व कृषि उत्पादन हमेशा से ही जलवायु परिवर्तन से होने वाली तबाही के शिकार बने है। थाईलैंड को उसके चावल की खेती वाले उत्तरी और उत्तरपूर्वी क्षेत्रों में पहले लम्बे समय तक सूखे और फिर उसके बाद आईं भीषण बाढ़ों की वजह से सन 2019 में चावल के उत्पादन में 65.7 करोड़ अमेरिकी डॉलर से लेकर 82.1 करोड़ अमेरिकी डॉलर का नुकसान हुआ। उसके चावल के आयात में 100,000 टन की गिरावट आई जो उसके निर्यात का 8 फीसदी हिस्सा है।[7] इंडोनेशिया में लगातार बेवक्त बारिश और बाढ़ की वजह से फसलों व औद्यानिकी (horticulture) के उत्पादों का नुकसान आम बात है। इस साल की शुरुआत में जनवरी में इंडोनेशिया में विनाशकारी बाढ़ आई। उस बाढ़ ने 12 ज़िलों में 209,884 हेक्टेयर खेती की ज़मीन को तबाह कर दिया।[8]

बांग्लादेश में तूफानों और बाढ़ के कारण फसलों, घरों और आजीविकाओं का बर्बाद होना किसानों के लिए कोई असामान्य घटना नहीं है। हालाँकि सन 2020 उनके लिए विशेष रूप से विनाशकारी रहा। अम्फान चक्रवात के कारण मई 2020 में कृषि में 7.2 करोड़ अमेरिकी डॉलर के नुक्सान का अनुमान लगाया गया था, लेकिन उसके बाद आई पिछले 20 वर्षों की सबसे खतरनाक बाढ़ से बांग्लादेश को 4.2 करोड़ अमेरिकी डॉलर की कीमत के बराबर फसलों का नुकसान हुआ। सतखीरा के गाबुरा में लेबूबुनिया गांव के मछुआरे अब्दुर रशीद ने अपने मछली पालन के तालाब की लगभग एक–तिहाई जमीन अम्फान में खो दी और अगस्त में आई भारी बाढ़ ने उन्हें गरीबी के दलदल में फेंक दिया जिससे उनके तीन बच्चों को स्कूल भी छोड़ना पड़ा। लालमोनिरहाट के कालमती के एक किसान अब्दुल समद की जमीन चक्रवात की डूब में चली गई। जब पानी उतरा और जमीन खेती लायक हुई तो उन्होंने फिर से 2 एकड़ जमीन पर सब्ज़ियाँ लगाईं जो अगस्त में आई बाढ़ से फिर नष्ट हो गईं। उन्होंने फिर से बुवाई की और फिर से अक्टूबर की बाढ़ उन्हें बर्बाद कर गयी। इस बार उनकी बची–खुची रकम भी ख़त्म हो गयी।[9] कुल मिलाकर बांग्लादेश के मछली बाजार को सन 2020 में अम्फान की वजह से 28.9 लाख अमेरिकी डॉलर का और बारिश और बाढ़ के कारण 5.64 करोड़ अमेरिकी डॉलर का नुकसान हुआ।[10]

भारत की जलवायु विनाश की कहानी भी कुछ हद तक इससे मिलती–जुलती ही है। खेती पर बनी भारत की संसदीय स्थाई समिति के अनुसार जलवायु संकट के कारण हर वर्ष कृषि अर्थव्यवस्था को 4 से 9 प्रतिशत घाटा होता है जो कुल जी.डी.पी. का 1.5 प्रतिशत है।[11]

इंडोनेशिया में बाढ़। फोटोः सेरिकत पेटानी इंडोनेशिया

तूफान के बाद भारी बारिश उत्तरी भारत व पाकिस्तान में आम बात है। लेकिन अब यह सूखाग्रस्त क्षेत्रों जैसे महाराष्ट्र व तेलंगाना को भी प्रभावित कर रहा है और वो भी सबसे ज्यादा गर्मी के मौसम में। सन 2019 में महाराष्ट्र के लातूर में ओलावृष्टि हुई। एक स्थानीय किसान गुणवंत के अनुसार ओलावृष्टि 18–20 मिनट से ज्यादा नहीं रही होगी, लेकिन बहुत से पेड़ गिरे थे, मरे हुए पक्षी चारों ओर फैले हुए थे व पशु बुरी तरह घायल थे।[12] अप्रैल 2020 में तेलंगाना के उन इलाकों में भी ऐसा ही भारी बारिश व ओलावृष्टि का अनुभव हुआ जो आमतौर पर सूखाग्रस्त रहते हैं। वहाँ ओलावृष्टि से 16,800 हेक्टेयर में फैली बाजरे की फसल बर्बाद हुई।[13] पाकिस्तान के किसान भी जलवायु बदलावों की ऐसी ही घटनाओं की वजह से अपनी खड़ी फसलों की बर्बादी झेल रहे हैं।[14] जलवायु परिवर्तन से टिड्डियों के हमले भी अभूतपूर्व तरह से बढ़ रहे हैं। ऐसे ही एक टिड्डी दल के हमले से पाकिस्तान की खेती सन 2020 में बुरी तरह बर्बाद हुई जिससे रबी की फसलों में 2.2 अरब अमेरिकी डॉलर और खरीफ की फसलों में 2.89 अरब अमेरिकी डॉलर जितने मूल्य का नुकसान हुआ।[15] भारत व अफगानिस्तान भी इससे अछूते नहीं रहे। टिड्डी दल के हमलों ने खाद्य आपूर्ति पर भी गंभीर असर डाला।

रिपोर्टों से पता चलता है कि भारत में जलवायु परिवर्तन किसानों की बढ़ती आत्महत्याओं से भी जुड़ा हुआ है। बर्कले, कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के एक अध्ययन के अनुसार जलवायु परिवर्तन के कारण पिछले तीन दशकों में लगभग 7,000 किसानों और खेतिहर मजदूरों ने आत्महत्या की होगी। फसलों में लगातार तापमान और बारिश में होने वाले उतार–चढ़ाव से फसलों को नुकसान होता है, फसलों की उत्पादकता कम होती है जिससे किसान कर्ज के बोझ तले दबते जाते हैं और आखिर में गरीब किसानों के पास खुदकुशी के अलावा कोई रास्ता नहीं रह जाता। बीस डिग्री सेंटीग्रेड तापमान के ऊपर सिर्फ एक दिन में एक डिग्री सेल्सियस तापमान के बढ़ने से

लगभग 70 आत्महत्याएँ होती हैं।[16] एक और अध्ययन सूखे व आत्महत्या के संबंध को रेखांकित करता है। भारत के 5 राज्य जिनमें सबसे ज्यादा सूखाग्रस्त क्षेत्र हैं, वहाँ किसान आत्महत्या के सबसे ज्यादा मामले हैं।[17]

जलवायु परिवर्तन पर असर डालती औद्योगिक खेती और नई तकनीकें

जब बात जलवायु परिवर्तन की आती है तो कृषि उसकी शिकार भी है और जलवायु परिवर्तन का कारण भी। चावल की खेती और पशुओं की जुगाली से मीथेन गैस उत्पन्न होती है जबकि मवेशियों के गोबर और पेशाब से, मिट्टी और खाद से मुख्य रूप से नाइट्रस ऑक्साइड निकलती है। यह दोनो गैसें कार्बन डाइऑक्साइड के मुकाबले ग्लोबल वार्मिंग को बढ़ाने में ज्यादा क्षमतावान होती हैं। हालाँकि जो अक्सर बताया नहीं जाता, वो तथ्य ये है कि इन गैसों का अधिकांश उत्सर्जन औद्योगिक खेती की पद्धतियों में अपनाई जाने वाली चीजों से होता है। औद्योगिक खेती में नाइट्रोजन आधारित उर्वरकों एवं कीटनाशकों का बहुत अधिक मात्रा में इस्तेमाल होता है। जिन वाहनों और मशीनों का इस्तेमाल होता है वे पेट्रोल–डीजल से चलते हैं और साथ ही औद्योगिक स्तर पर पशुमाँस के उत्पादन के लिए जो प्रक्रियाएँ की जाती हैं उनसे भी मीथेन का अपशिष्ट उत्सर्जित होता है।[18] जब कोई फसल या माँस बड़े पैमाने पर व्यापार के लिए एक उद्योग की तरह उत्पादित किया जाता है तो उसके लिए समतल मैदानों की जरूरत पड़ती है जहाँ फसलें आसानी से उगाई जा सकें, जिसके लिए जंगलों को काटा जाता है। बड़े पैमाने पर किये जाने वाले उत्पादन को देर तक भंडारण करने के लिए कोल्ड स्टोरेज और प्रशीतकों की जरूरत भी पड़ती ही है जिसमें फिर नुकसानदेह गैसों का इस्तेमाल किया जाता है। अलग–अलग जगह पर होने वाले भारी–भरकम उत्पादन की खपत भी सिर्फ उसी जगह नहीं होती इसलिए उन्हें अलग–अलग उपभोक्ता बाजारों तक सुरक्षित पहुँचाने के लिए लम्बी दूरी तक लाने ले जाने की जरूरत होती है। इससे भी नुकसानदेह गैसों का उत्सर्जन होता है। भोजन उत्पादन की औद्योगिक प्रणाली में यह सभी बुराइयाँ अनिवार्य रूप से शामिल होती ही हैं। वनों की कटाई, प्रशीतन (रेफ्रिजरेशन) व लंबी दूरी का परिवहन इस औद्योगिक खेती की प्रक्रिया के अभिन्न अंग हैं। इस पद्धति के जरिये की जाने वाली खेती में डीजल–पेट्रोल पर, अन्य जीवाश्म ईंधनों और रसायनों पर निर्भरता ज्यादा होती है।

ऐसी खेती से होने वाले उत्पादन को अपना बाजार भी दुनिया के अनेक हिस्सों में चाहिए होता है। इस तरह यह खेती बहुत ज्यादा तादाद में ऊर्जा की खपत करने वाली होती है। इन्हीं वजहों से औद्योगिक खेती जलवायु परिवर्तन के लिए प्रमुख रूप से जिम्मेदार होती है। इसके बावजूद पूरी दुनिया में इसे द्वितीय हरित क्रांति, जीन (गुणसूत्र) क्रांति कहकर और अब हमारी जलवायु के नाम पर इस भयंकर कार्बन उत्सर्जन करने वाली खेती को बढ़ावा दिया जा रहा है। औद्योगिक खेती का यह नया दौर कंपनियों के मुनाफे के मानकों से संचालित है और इसलिए इसमें अच्छे–बुरे प्रभावों की परवाह किये बिना बेहद खतरे वाली तकनीकें भी अपनाई जा रही हैं। एकतरफ इस पद्धति में अनुवांशिक तकनीक वाली फसलों को सूखे, खारेपन और पाले (भीषण ठंड) के लिए प्रतिरोधी बताया जा रहा है। वहीं दूसरी ओर इसमें कृत्रिम जीव विज्ञान, भौगोलिक इंजीनियरिंग और औद्योगिक कृषि ईंधनों का इस्तेमाल भी किया जा रहा है। इन सभी नई तकनीकों और संयंत्रों को खेती के लिए फायदेमंद और जलवायु बदलावों के प्रति सहनशील बताकर प्रोत्साहित किया जा रहा है जबकि यह सब बड़े पैमाने पर होने वाली एक–फस्लीय खेती, अत्याधुनिक तकनीकि में लगने वाले बड़े निवेशों और रसायनों से चलने वाली व्यवस्थाओं पर निर्भर करते हैं जिनके लिए बहुत बड़ी पूँजी और केंद्रीय नियंत्रण जरूरी होता है। दरअसल जलवायु बदलावों को नियंत्रित करने का दावा करने वाले ये समाधान पूरी तरह झूठे और भ्रामक हैं तथा इनका मकसद जलवायु संकट से निपटने के बजाए बड़ी कंपनियों के लिए लगातार मोटा मुनाफा सुनिश्चित करना है।

अफ्रीका पर लादी जा रही इस नई हरित क्रांति ने वहाँ यह जाहिर कर दिया है कि इसका नजरिया जलवायु

बदलावों से निपटने के लिए किसानों द्वारा अपनाये गए प्रयासों को कितनी नीची नजर से देखता है। यही नजरिया ए.जी.आर.ए. (एलाइंस फॉर अ ग्रीन रिवॉल्यूशन इन अफ्रीका) का भी है जो अपने रासायनिक उर्वरकों, संकर बीजों और एक ही पद्धति से की जाने वाली खेती को बढ़ावा देते हैं।[19]

ऐसे भ्रामक और झूठे जलवायु समाधानों का मकसद प्रकृति के क्रियाकलापों का निजीकरण करके उन्हें बाजार में बेचना है। जंगल, जमीन, प्राकृतिक नम भूमि (दलदली जमीन), नदियों, समुद्री किनारों पर पाई जाने वाली सदाबहार वनस्पतियों के जंगल (मैनग्रोव) और महासागरों के पारिस्थितिकी तंत्र को इससे विनाश का खतरा है जबकि इन्हीं प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्रों पर जीवन निर्भर करता है। जैसा कि हमने ए.जी.आर.ए. द्वारा उठाये गए कदमों के नतीजे के तौर पर देखा है कि बाजार केंद्रित ऐसे समाधान स्थानीय समुदायों को उनकी जमीनों और प्राकृतिक संसाधनों से अलग–थलग करने के लिए बनाये गए हैं। इन नई तकनीकों से खोजे जा रहे समाधानों का एक असर यह भी देखने को मिल रहा है कि खेती में महिलाओं की भूमिका और अधिक हाशिये पर धकेली जा रही है। इससे महिलाओं की अपने और अपने परिवार के लिए आजीविका कमाने की क्षमता और अवसर में काफी कमी आ रही है। जलवायु स्मार्ट (climate smart) कही जाने वाली खेती की पद्धतियों के एक महत्त्वपूर्ण हिस्से के तौर पर खरपतवारों और खतपतवार रोधी फसलों की खेती को शून्य जुताई (जीरो टिलेज) के नाम पर प्रोत्साहित किया जा रहा है। ऐसा दावा किया जाता है कि इससे जमीन में कार्बन सोखने की मात्रा बढ़ जाती है जिससे कार्बन डाईऑक्साइड का उत्सर्जन कम हो जाता है।[20] क्योंकि खतपतवार की खेती में जुताई की जरूरत नहीं होती। हालाँकि इन झूठे समाधानों से न तो कार्बन डाईऑक्साइड का उत्सर्जन कम होता है और न जलवायु बदलावों की वजह से होने वाले सामाजिक संकटों में ही कोई राहत मिलती है बल्कि ये तकनीकें और पद्धतियाँ व्यापार को बेरोकटोक चलने में और कंपनियों के मुनाफे बढ़ाने में मददगार हो गई हैं। भारत में खेतों से खतपतवार निकालने का काम (निंदाई) अधिकांशतः महिला कृषि मजदूर ही करती हैं जिनकी आमदनी इन सब तरीकों के चलते घट रही है।

जलवायु स्मार्ट खेती दरअसल स्मार्ट समाधान नहीं है

जलवायु स्मार्ट खेती (climate smart agriculture - सी.एस.ए.) को सरकार और कंपनियों के द्वारा खेती में जलवायु से होने वाले संकटों के समाधान की जादुई छड़ी के रूप में बढ़ावा दिया जा रहा है। सी.एस.ए. जिसे एक नई खोज के तौर पर प्रस्तुत किया जा रहा है, दरअसल उन्हीं पुरानी औद्योगिक हरित क्रांति की पद्धतियों का ही नया नामकरण है जिनकी वजह से दुनियाभर की जलवायु में उथल–पुथल हुई है। आज की बदहाल जलवायु की स्थिति के लिए भी वही जिम्मेदार हैं। ये जानकर किसी को शायद ही आश्चर्य होगा कि जलवायु परिवर्तन के समाधान के तौर पर सी.एस.ए. को थोपने वाली विश्व बैंक जैसी शक्तियाँ और संस्थाएँ वही हैं जिन्होंने पहले हरित क्रांति को बढ़ावा दिया था। सी.एस.ए. का समाधान उसी नाकाम तर्क के आधार पर थोपा जा रहा है। जलवायु पर होने वाली वार्ताओं में सी.एस.ए. को कम कार्बन इस्तेमाल की तकनीकों को साझा करने की पहल (लो कार्बन टेक्नोलॉजी पार्टनरशिप्स इनिशिएटिव्ह, एल.सी.टी.पी.आई.) के तहत बढ़ावा देने के लिए आठ प्रमुख बिंदुओं में से एक के तौर पर पेश किया गया था। यह एल.सी.टी.पी.आई. टिकाऊ विकास के लिए बनी विश्व व्यापार परिषद (वर्ल्ड बिजनेस काउन्सिल फॉर सस्टेनेबिल डेव्हलपमेंट, डब्ल्यू.बी.सी.एस.डी.) का हिस्सा थी जिसने पेरिस में और उसके बाद हुई जलवायु वार्ताओं को प्रभावित करने के लिए भोजन और खेती के क्षेत्रों में सक्रिय दुनिया के सभी बड़े–बड़े बहुराष्ट्रीय कॉरपोरेशनों को इकट्ठा किया था।[21]

सी.एस.ए. में आनुवांशिकी इंजीनियरिंग (genetic engineering) आधारित फसलों के प्रति रुझान है। खासतौर पर ऐसी फसलें जो खारेपन, बाढ़ और पाले के लिए प्रतिरोधी हैं। हरित क्रांति के पूर्व निर्माताओं में भी यही रुझान देखने को मिलता है। भारत की हरित क्रांति के जनक कहे जाने वाले प्रोफेसर एम. एस. स्वामीनाथन

दावे से यह कहते हैं कि "आनुवांशिक तकनीक हमें ऐसी किस्मों की पैदावार में मदद करती है जो जलवायु स्मार्ट हो।"[22] संयुक्त राष्ट्र संघ के भोजन एवं कृषि संगठन (फूड एन्ड एग्रीकल्चर ऑर्गेनाइजेशन, एफ.ए.ओ.) द्वारा भी इसी विश्वास को कायम रखा गया है। एफ.ए.ओ. ने खुलकर कहा है कि कम या अधिक, कैसी भी हो, जैव तकनीकें विशेष रूप से छोटे उत्पादकों को जलवायु परिवर्तन से निपटने, उसे अनुकूल बनाने और अधिक सहनशील होने में मदद कर सकती है।[23] एफ.ए.ओ. की तरफ से आये इस बयान का आनुवांशिकी इंजीनियरिंग की खेती के पैरोकारों द्वारा उत्साह से स्वागत किया गया क्योंकि यह "जलवायु स्मार्ट" जैव तकनीक वाली फसलों का अनुमोदन करता है।

एक तरफ तो नई तकनीकों के प्रति सी.एस.ए. का यह जुनून आजमाई और परखी हुई पारम्परिक तरीके से की जाने वाली खेती की तकनीकों और देशी बीज की किस्मों की उपेक्षा करता है और दूसरी तरफ जलवायु की तथाकथित स्मार्ट प्रौद्योगिकियों, खाद–बीजों और कर्ज पर निर्भरता बनाता है। पारम्परिक ज्ञान से हासिल वैज्ञानिक समझ के साथ इस्तेमाल किये जाने वाले ऐसे कई उदहारण मौजूद हैं लेकिन एशिया में विभिन्न देशों की सरकारों ने इस तरह के प्रयोगों का समर्थन करने या बढ़ावा देने में दिलचस्पी नहीं दिखाई है। इसके बजाए वे कॉर्पोरेट क्षेत्र द्वारा जलवायु के स्मार्ट पैकेज के झूठे समाधानों की तरफ ज्यादा आकर्षित हुईं हैं।

जिस तरह हरित क्रांति में कृषि रसायनों के प्रयोग को ऋण और तकनीकी सहायता हासिल करने के लिए पूर्व शर्त बनाया गया था, ठीक वैसे ही सी.एस.ए. मौजूदा समय में खेती पर अनुवांशिक मिश्रण की तकनीकों (ट्रांसजेनिक्स) और जैव तकनीक को थोप रहा है। जो कम्पनियाँ किसानों और कृषि समुदायों पर विनाशकारी सामाजिक प्रभाव डालने के लिए पहले से ही कुख्यात हैं, जिन्होंने जेनेटिकली मॉडिफाइड (जीएम) बीजों को बढ़ावा देने एवं जमीन हड़पने के अभियान चलाए हैं वे ही अब अपने आपको "जलवायु स्मार्ट" घोषित कर चुकी हैं।[24]

जमीनी हकीकतः जलवायु संकट से निपटने के किसानों के समाधान

रॉडेल इंस्टीट्यूट ने खेती की जैविक पद्धति और रासायनिक पद्धति में 27 वर्षों तक तुलना करके अध्ययन का दस्तावेज बनाया है। इसके अनुसार जैविक पद्धति से की जाने वाली खेती से मिट्टी में कार्बन की मात्रा करीब 30 प्रतिशत तक बढ़ी हुई पाई है। जिस मिट्टी में कार्बन की अधिकता होती है वह पानी का अधिक संरक्षण करती है और वह ऐसे स्वस्थ पौधों के विकास में सहायक होती है जिनमें सूखे, कीटों एवं बीमारियों से लड़ने की क्षमता अधिक होती है। विश्व स्तर पर जितना कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जित होता है, जैविक खेती उसका लगभग 40 प्रतिषत कम कर सकती है।[25]

स्थानीय स्तर पर समुदाय आधारित खेती के ऐसे अनेक प्रमाण हैं जो यह इशारा करते हैं कि किसानों द्वारा की जाने वाली खेती की पारिस्थितिकी समझ में जलवायु पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों के रोकने की या उनकी गंभीरता को कम करने की विशाल सम्भावनाएँ होती हैं। उनमें पारिस्थितिकी के अनुसार बदलाव की संभावनाएँ भी होती हैं। इस तरह की खेती ग्रीन हाउस गैसों (जी.एच.जी.) के उत्सर्जन को कम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। कृषि पारिस्थितिकी वाली खेती में जीवाश्म ईंधन आधारित चीजों का उपयोग कम होता है और औद्योगिक कृषि आधारित पद्धतियों की तुलना में यह कार्बन मानकों पर भी बेहतर होती हैं। कृषि पारिस्थितिकी वाली खेती में ऐसी बहुत–सी खेती की पद्धतियाँ हैं जिनमें पर्माकल्चर (समग्र खेती), कृषि–वानिकी, जैविक खेती, बायो डायनामिक खेती और शून्य लागत पर की जाने वाली प्राकृतिक खेती शामिल है जो मिट्टी में कार्बन की उपस्थिति को संतुलित करती हैं और इसलिए वे जलवायु संबंधी खतरों को कम करने में ताकतवर औजार होती हैं।

दुनिया भर में छोटे किसान लगातार अपने रहन–सहन और खेती–किसानी में ऐसे तरीकों को अपना रहे हैं जिससे जलवायु आपदा का वे सामना कर सकें और ग्रीनहाउस गैसों (जी.एच.जी.) का उत्सर्जन भी कम हो।

सूखे, बेमौसम बारिश, ओलावृष्टि, मानसून में कमी और कीड़ों के बढे हुए हमलों जैसे जलवायु के असर झेलने के बाद छोटे किसान जलवायु संकट से लड़ने की अपनी रणनीतियाँ विकसित कर रहे हैं। इनमें निम्नलिखित प्रयास किये जा रहे हैं:

- वर्षा जल संचयन प्रणाली
- बेहतर सिंचाई तकनीक जिसमें ड्रिप सिंचाई शामिल है
- पारंपरिक बीजों, जैव उर्वरकों और जैव कीटनाशकों का उपयोग
- मल्चिंग (पलवार – जिसमें खेत को सूखे पत्तों आदि से ढक दिया जाता है जिससे मिट्टी में नमी बनी रहे),
- बहुफस्लीय और मिश्रित फसल पद्धतियाँ
- समयानुसार मौसम की जानकारी एकत्र करना
- कृषि पद्धतियों की उचित योजना बनाना
- जैव विविधता संरक्षण और
- सौर ऊर्जा का उपयोग बढ़ाना।

अधिकतर बार किसानों ने ऐसी कृषि पारिस्थितिकी वाली खेती को इतनी आसानी से और सहजता से सफलतापूर्वक किया है कि इस पर किसी का ध्यान ही नहीं गया। जब 2020 में टिड्डियों के दल ने भारत में फसलों पर हमला किया तो प्रभावित राज्य सरकारों ने इससे निपटने के लिए हवाई जहाजों और ड्रोन द्वारा रसायन छिड़काव का आदेश दिया, लेकिन छोटे किसानों ने उसके पहले ही कीड़ों को भगाने की स्थानीय तकनीकों को खोज लिया था जिनमें जीवाश्म ईंधन का शून्य उपयोग होता है। ऐसी ही एक तकनीक ढोल–नगाड़ों से तेज ध्वनि पैदा करके कीड़ों को भगाने की भी थी।

बाढ़ के प्रति सहनशील चावल की किस्म, बसुधा, भारत। फोटो: डॉ. देबल देब

संकर और जीएमओ बीजों से फसल तभी अच्छी मिलती है जब उनके साथ जीवाश्म ईंधन आधारित रसायनों का प्रयोग किया जाये। इसके विकल्प के तौर पर दक्षिण एशिया और दक्षिण–पूर्व एशिया में बीजों की देशी किस्मों का संरक्षण करने वाले ऐसे अनेक बीज नेटवर्क उभरकर आये हैं जो कठोर मौसम की स्थिति से निपटने के लिए जलवायु के अनुकूल बीज देते हैं। बीज बचाने वाले ऐसे नेटवर्क किसानों को रचनात्मक तरीके से विभिन्न किस्मों के अनाजों की खेती करने के लिए मदद करते हैं जिससे किसान मिटटी, जलवायु, पोषण, स्वाद, भंडारण, कीटों एवं रोगों इत्यादि की विभिन्न चुनौतियों से निपट सकें। पारंपरिक बीजों को बचाने या बीज संरक्षक में महिला किसानों की विशेष रूप से बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इन बीजों में प्रतिकूल जलवायु के प्रति मजबूत प्रतिरोधक क्षमता होती है।

पूरे एशिया महाद्वीप में निवास करने वाले आदिवासी समुदायों को लगातार बढ़ती जाती जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है जैसे अनेक जानवर, भोजन की अनेक किस्में और पेड़ों की अनेक प्रजातियाँ विलुप्त हो रही हैं, जंगल टुकड़ों में बँटते जा रहे हैं, तेजी से होने वाले विकास के अनेक दुष्प्रभाव पड़ रहे हैं। हालाँकि जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों से निपटने के लिए उन्होंने अपने पारंपरिक ज्ञान और

पद्धतियों से स्थानीय खाद्य सम्प्रभुता को बचाने की नई रणनीतियाँ विकसित कर लीं हैं।

उदाहरण के लिए भारत के ओडिशा राज्य में निवास करने वाले कोंड समुदाय के लोग जलवायु के अनुकूल जैव विविधता को बनाए रखनेवाली खेती करने की ऐसी पद्धतियाँ अपनाते हैं, जिससे खेती को लाभ पहुँचाने वाले कीड़े, परागणकर्ता, मक्खियों और पक्षियो ंका जीवन चक्र उनके खेतों में ही चलता रहे। एक आदिवासी महिला किसान सुनामइन मम्बलाका अपने 2 हेक्टेयर के खेत में 80 से अधिक किस्म की फसलें उगाती हैं। इसमें बाजरा और ज्वार शामिल हैं जो सूखे और अत्यधिक गर्मी से ग्रस्त क्षेत्रों के लिए उपयुक्त होते हैं। इसके साथ ही देसी चावल की ऐसी किस्में भी उगाते हैं जो ऊँची जगहों पर कम पानी और कम समय में तैयार हो जाती हैं और जो सूखे जैसी स्थितियो ंको भी झेल लेती हैं।[26] ओडिशा में, किसान चावल के भूसे पर आधारित आलू की खेती भी कर रहे हैं, जिससे किसान पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाने के साथ ही खेत को समतल करने या जोतने के लिए लगने वाले लागत खर्च से भी बच जाते हैं। किसान चावल की कटाई के बाद बचे हुए भूसे और ठूंठ के बीच आलू के कंद को रोपते हैं, जिससे पानी की आवश्यकता 80 प्रतिषत कम हो जाती है, क्योंकि चावल के भूसे में लंबे समय तक नमी को बनाये रखने की क्षमता होती है और इससे खरपतवारों को नियंत्रित करने में भी मदद मिलती है।[27]

फिलिपींस में एक किसान–कृषि वैज्ञानिक संगठन मासिपैग (MASIPAG) ने प्रयोगों के माध्यम से यह दिखाया है कि जैव–विविधता आधारित खेती के माध्यम से जलवायु परिवर्तन से होने वाले नुकसानों को कम करना एवं उसे खेती के अनुकूल बनाना संभव है।[28] मासिपैग के अनुसार जलवायु परिवर्तन का सामना करने के लिए छोटी जोत के किसानों द्वारा अपनाई जाने वाली खेती की देसी तकनीकें स्वास्थ्य के लिए बेहतर होने के साथ ही, सस्ती एवं परिस्थिति के अनुकूल साबित हुई हैं। उन्होंने बीज की ऐसी देसी किस्मों को चुना जो जल्दी बढ़ती हैं, जिनमें अतिवृष्टि या सूखे को झेलने की प्रतिरोधक क्षमता अधिक है। इसके साथ जल प्रबंधन की ऐसी तकनीक विकसित की है जिससे बाढ़ से निपटने के साथ ही सूखे मौसम में मिट्टी में नमी बनी रहे। पिछले तीन दशकों में मासिपैग के किसान समुदायों ने चावल की दो हजार से ज्यादा किस्में विकसित की हैं। अपने चावल प्रजनन तथा बीज सुधार के कार्यक्रमों से इन किसान समुदायों ने सूखा प्रतिरोधी बीज की अट्ठारह किस्में, बाढ़ या अतिवृष्टि में भी पनप जानेवाली बारह किस्में, बीस किस्में खारेपानी में पनपने वाली एवं चौबीस किस्में कीट एवं रोग से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता रखने वाली किस्में की पहचान और संरक्षण करने में कामयाबी पाई है।[29]

जलवायु सहनशील चावल की स्थानीय किस्मों का मासिपैग में संग्रह। फोटोः मासिपैग

जलवायु अनुकूलन से आगे जाकर मासिपैग के किसानों ने चावल की खेती में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग पर पूरी तरह से प्रतिबंध लगाकर खेत से कार्बन उत्सर्जन को काफी कम किया है। इसी दिशा में उन्होंने एक और महत्त्वपूर्ण रणनीति अपनाई है जिसके तहत एक ही समय में अलग–अलग तरह की फसलें और पेड़ उगाना शामिल है। ताकि बाढ़, अतिवृष्टि, सूखे एवं चक्रवातों के कारण खारेपानी के भर जाने से फसलों को होनेवाले नुकसान या जोखिम को कम किया जा सके। यह जैव विविधता प्रणाली अलग–अलग समय पर विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ और चारा, हरी खाद, जलाऊ लकड़ी, बागड़, भूमि कटाव नियंत्रण, वन्य जीवन और ऐसे अनेक बहुआयामी फायदे उपलब्ध कराती है। मासिपैग से जुड़े किसानों ने इस रणनीति में छिपे मूल विचार को फसलों

की अनेक किस्मों को उगाने में इस्तेमाल किया है ताकि वे अपनी खेती को जलवायु और भौगोलिक परिस्थितियों के अनुकूल बना सके। कुछ किसान आय के वैकल्पिक स्रोत के रूप में खेती के साथ पशुधन को भी जोड़ते हैं। मासिपैग द्वारा कृषि–पारिस्थितिकी पर आधारित यह विविधता वाली उत्पादक और सहनशील खेती की प्रणालियाँ कृषि समुदायों को अनुकूलन क्षमता अधिक से अधिक बढ़ाने में मुख्य मदद देती हैं। इन बुनियादी चीजों से ही खेतिहर समुदाय को खेती की प्रक्रिया में जलवायु परिवर्तन के तनाव से निपटने और अपनी एकता व सामाजिक ताने–बाने को मजबूत करने में मदद मिलती है।

इसी तरह "साउथ–ईस्ट एशिया रीजनल इनिशिएटिव्स फॉर कम्युनिटी एम्पावरमेंट, सीराइस" (सामुदायिक सशक्तिकरण हेतु दक्षिण–पूर्व एशिया की क्षेत्रीय पहल) ने फिलिपींस और कंबोडिया में कृषक समुदायों के साथ मिलकर अधिक सहनशील और प्रतिरोधक क्षमता वाले बीजों के संरक्षण और वितरण का समुदाय आधारित ढांचा विकसित किया जिसका प्रबंध भी समुदाय करता है। सीराइस (SEARICE) के जलवायु परिवर्तन अनुकूलन कार्यक्रम से दोनों देशों में चावल की विविधता और स्थानीय बीजों के स्थानीय प्रबंधन को सम्भव किया है जिससे दोनों देशों में स्थानीय समुदायों को मजबूत बनाया है। इस सबका उद्देश्य समुदायों के जलवायु अनुकूलन की कुशलता को बढ़ाना है।[30]

सीराइस ने कंबोडिया में स्थानीय समुदायों की ऐसे स्कूल स्थापित करने में मदद की जहाँ किसान खेत में खेती करते हुए जलवायु अनुकूलन की पद्धतियों को सीख सकें। उन्होंने किसानों को चावल की ऐसी किस्में चुनने और रोपने के लिए प्रशिक्षित किया जो कम समय में पककर तैयार हो जाती हैं। सूखे का खतरा होने पर एक मौसम में ही दो फसलों का उत्पादन भी सिखाया। यह जलवायु परिवर्तन के अनुकूल की जाने वाली खेती का ही प्रशिक्षण था। फिलिपींस के पहाड़ी इलाकों में किसानों ने मिट्टी के कटाव से निपटने के लिए छत पर खेती करने की पद्धति को अपनाया। तटीय क्षेत्रों में उन जगहों पर जहाँ समुद्र के पानी की घुसपैठ आम घटना है वहाँ किसानों ने मिट्टी की लवणता से निपटने के लिए इस तरह के चावल की उन देसी किस्मों को खेती के लिए इस्तेमाल किया जो लवण प्रतिरोधी होती हैं। वे ऐसा करने में इसलिए कामयाब रहे क्योंकि देसी बीजों तक उनकी पहुँच और नियंत्रण था। यह नियंत्रण उन्होंने बीजों को विभिन्न चुनौतियों के अनुरूप ढालने से और उन्हें अधिक लचीला बनाने से हासिल किया। सीराइस फिलिपींस और कंबोडिया में अपने सामुदायिक बीज बैंकों में चावल की करीब पचास से अधिक किस्मों को संरक्षित करने मे कामयाब हुआ। यह जलवायु की अत्यधिक विपरीत परिस्थितियों में बहुत उपयोगी साबित हुआ। फसलों के भीतर आनुवांशिक विविधता बनाये रखने में तीन हजार से अधिक किसान परिवार सक्षम हैं। आने वाली पीढ़ियों के लिए यह बदलती हुई जलवायु की परिस्थितियों से निपटने का बहुमूल्य खजाना है।

बसुधा के वृहि चावल का संग्रह। फोटो: डॉ. देबल देब

इधर भारत में भी डॉ देबल देब द्वारा ओडिषा में बसुधा फार्म और वृहि (चावल को संस्कृत में वृहि भी कहते हैं) सामुदायिक बीज बैंक बनाया गया है। इसमें चावल की 1400 से अधिक किस्मों का संरक्षण किया गया है। एक ही फसल की एक ही स्थान पर मौजूद इतनी अधिक विविधता वाला यह भारत का सबसे बड़ा बीज संरक्षण है। इन बीजों में जलवायु में होने वाले परिवर्तनों को झेलने की क्षमता है और ये हर तरह की जलवायु, मिट्टी और जल स्रोत के लिए उपयुक्त हैं। यह प्रतिकूल परिस्थितियों को भी

सहन कर सकते हैं। वृहि चावल के बीज तीन दशकों से अधिक समय से बसुधा फार्म में एकत्रित और संरक्षित कर रहा हैं। हर साल इन बीजों का सैकड़ों किसानों के साथ आदान–प्रदान किया जाता है। इससे इन बीजों में तापमान और जलवायु में बदलाव, मिट्टी के पोषक तत्वों और पानी के तनाव में अंतर से निपटने की अपार संभावनाएं मिलती हैं। वृहि संग्रह में बाढ़ प्रतिरोधी ऐसी चावल की किस्में भी मौजूद हैं जो बाढ़ के पानी में भी लम्बी होकर जीवित रहती हैं। कुछ किस्में जलमग्न परिस्थितियों में भी पनप सकती हैं। बाकी किस्में बारिश के आगे–पीछे होने वाले बदलाव को भी सह सकती हैं और अत्यधिक खारेपानी की मिट्टी में भी पनप सकती हैं।[31] जलवायु संकट और मौसम में होने वाले भीषण बदलावों का सामना करने के लिए खाद्य प्रणालियों में विविधता आवश्यक है।

जब 2009 में बंगाल की खाड़ी के तट पर सुन्दरबन के गांवों में आइला चक्रवात टकराया था तो वृहि चावल की खारेपन प्रतिरोधी देसी बीजों की किस्मों ने उन किसानों को बचा लिया जिनकी फसलें तबाह हो गई थीं और जिनकी जमीनों में खारापन बहुत ज्यादा बढ़ जाने से बुरा असर पड़ा था।

वृहि की इन किस्मों में खारेपन के प्रति इतनी अधिक सहनशीलता होती है कि किसानों ने खारे पानी को बाहर निकालने के लिए मेड़ें बनाये बिना ही फसल उगा ली। ये बीज न केवल खारेपन के प्रतिरोधी थे बल्कि इनसे किसानों को संकर बीजों से बेहतर पैदावार हासिल हुई। चक्रवात आने के पहले यही किसान संकर बीज उगाया करते थे। वृहि के बीज से एक हेक्टेयर भूमि के दसवें हिस्से से भी कम में 240 किलोग्राम उपज प्राप्त हुई।[32] वृहि चावल की कुछ किस्मों में अनेक सांस्कृतिक और औषधीय गुण मौजूद होते हैं और कुछ किस्मों में लौह, जस्ते, विटामिन और एंटी ऑक्सिडेंट जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों की भरमार होती है। इनसे किसान समुदायों की पोषण सुरक्षा भी सुनिश्चित होती है।[33]

बंगोरा सगुन महिला समूह द्वारा स्थापित और प्रबंधित अनाज बैंक, बोंगारा गाँव, काशीपुर ब्लॉक, पुरुलिया, भारत। फोटो: डी.आर.सी.एस.सी.

पश्चिम बंगाल में एक किसान आधारित संगठन डेव्हलपमेंट रिसर्च कम्युनिकेशन एंड सर्विसेज सेंटर या डी.आर.सी.एस.सी. (विकास अनुसंधान संचार और सेवा केंद्र, Development Research Communication and Services Centre, DRCSC) पिछले 30 वर्षों से लगातार वहाँ के विभिन्न कृषि पारिस्थितिकीय क्षेत्रों में आपदा–सहनीय और जलवायु हितैषी मॉडलों के द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के टिकाऊ प्रबंधन को विकसित कर रहा है। इसमें एकीकृत खेती भी शामिल है। जैव विविधता वाले इस एकीकृत खेती के मॉडल में कम से कम 5–6 प्रकार की खाद्य फसलों, 10–12 प्रकार की सब्जियों, भोजन, ईंधन और चारा देनेवाले पेड़ों एवं औषधीय पौधों को लगातार पूरे वर्ष शामिल किया जाता है। डी.आर.सी.एस.सी. इन कृषि क्षेत्रों में खेतों में संरक्षित किये गए देशी बीजों व बायोगैस घोल से बनी स्थानीय जैविक खाद्य का उपयोग करता है एवं चावल, मछली, बतख, अज़ोला (एक तरह की काई) जैसी बहुस्तरीय एवं मिश्रित फसलों की एकीकृत तरीके से की जाने वाली खेती को बढ़ावा देता है।[34] [35]

ग्रामीण बंगाल के भारत वाले हिस्से को आमतौर पर साल में दो बार भोजन की बहुत कमी का सामना करना पड़ता है। सूखे, बाढ़ या तूफान की वजह से हालात और भी बदतर हो जाते हैं। इन क्षेत्रों के कई जिलों में डी.आर.सी.एस.सी. किसानों को ग्रामीण खाद्यान्न बैंक की सुरक्षा का प्रशिक्षण देता है।[36] ये खाद्यान्न बैंक ऊँची

जगहों पर बनाये जाते हैं ताकि वे बाढ़ के पानी से बचाये जा सकें। यहाँ किसानों को कम ब्याज दर पर चावल आसानी से सुलभ हो जाता है जिसका भुगतान वे अगली फसल के आने पर करते हैं। बीरभूम के गाँवों में किसानों को भोजन और चारा देनेवाले पेड़, कंद, जंगली सब्जियां और खाई जाने वाली भाजी लगाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है जो बाढ़, तूफान या सूखे से प्रभावित होने पर मनुष्यों और जानवरों दोनों के लिए भोजन की आपूर्ति सुनिश्चित करते हैं।

एक सीढ़ीदार तालाब और तटबंध, सेजागाँव, ब्लॉक काशीपुर, पुरुलिया, भारत। फोटोः डी.आर.सी.एस.सी.

पश्चिम बंगाल में ही ताज़े पानी की आपूर्ति में लगातार कमी का सामना कर रहे गांव वालों को जल प्रबंधन के अपने तौर–तरीकों को बदलना पड़ा था। बोरो चावल की खेती के प्रति उनका वर्तमान दृष्टिकोण इसका स्पष्ट उदाहरण है। इस फसल के लिए बड़ी मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है, जिसे सामान्य रूप से डीजल/इलेक्ट्रिक पंपों का उपयोग करके जमीन से निकाला जाता है। हालांकि इस तकनीक से जमीनी जल का स्तर लगातार तेजी से घटता जाता है। इसलिए वहाँ के किसानों ने एस.आर.आइ. (सिस्टेमैटिक राइस इंटेंसिफिकेशन, SRI) विधियों को अपनाया है। एस.आर.आइ. की विधि में गुच्छों के बजाय चावल की एक पाघ को बोया जाता है जिससे कम मात्रा में बीज की आवश्यकता होती है और खेतों को लगातार पानी भरे नहीं रखना पड़ता है। यह अन्य बीजों की तुलना में पानी की मात्रा को कम कर देता है, जो बदले में ग्रीनहाउस गैस (जी.एच.जी.) उत्सर्जन को कम करता है। लेकिन पश्चिम बंगाल में ग्रामीण केवल यहीं पर नहीं रुके रहे। वे बारिश के जल को एकत्र करने का काम भी कर रहे हैं। गाँव वालों ने अनेक तालाब खोदे हैं ताकि वे पानी को इकट्ठा कर सकें। इस पानी से वे न केवल अपनी फसलें सींचते हैं बल्कि इसका उपयोग मछली पालन में भी करते हैं, भू–जल निकालने की उनकी जरूरतें भी इससे बहुत कम हो गई हैं। ये पूरा ढाँचा सुनियोजित तरह से बनाया गया है। तालाब के चारों ओर बेलों एवं लताओं वाली सब्जियाँ लगाई जाती हैं। जब जलस्तर नीचे जाता है तो विभिन्न प्रकार की मौसमी सब्जियां और दालें, यहां तक कि बोरो चावल भी उगाया जाता है। जैव अनुकूलन की ये रणनीतियाँ जलवायु से पड़ने वाले प्रभावों से लम्बे समय तक निपटने के लिए विकसित की गई हैं।

जलवायु अनुकूलन की ये पद्धतियाँ और रणनीतियाँ एशिया के अन्य भागों में स्थानीय समुदायों में प्रयुक्त पाई गयी हैं। मलेशिया के सबाह प्रान्त में अनेक पीढ़ियों से एक ही खेत में बहु–फसलीय जैव–विविध खेती करने के तरीके का इस्तेमाल किया जा रहा है। इससे मौसम के बदलते मिजाज के चलते फसल खराब होने का जोखिम कम हो जाता है। बांग्लादेश के बाढ़ संभावित क्षेत्रों में स्थानीय समुदाय तैरते हुए सब्जी बागान बना रहे हैं, जिसे स्थानीय भाषा में 'बैरा खेती' कहा जाता है। वहीं दूसरे क्षेत्रों में स्थानीय समुदाय झूम खेती (शिफ्टिंग कल्टीवेशन) की पद्धति उपयोग में लाते हैं और ऐसे इलाकों की तरफ खेती करने चले जाते हैं जहाँ जलवायु के बदलावों का ज्यादा असर न पड़ता हो। नेपाल में आर्यन और मकवनपुरे जैसी चावल की नई किस्में लाई गई है जो पानी पर कम निर्भर होती हैं। वियतनाम में उष्ण कटिबंधीय तूफान की लहरों को रोकने के लिए तटिय किनारें पर बाड़/मेड़ लगाते हैं। दक्षिण एशिया के कई क्षेत्रों में घरों और खेती के लिए वर्षा जल का संचयन काफी आम हो गया है। इस तरह इस पूरे क्षेत्र में जलवायु अनुकूलन के उदाहरण बढ़ते जा रहे हैं।[37]

क्या पारिस्थितिकीए कृषि, दुनिया के खोद्यान की जरूरत पूरी कर सकता है?

यह स्पष्ट है कि दुनियाभर में प्रकृति की अनिश्चितता और जलवायु आपदा से कृषि क्षेत्र को भारी नुकसान हो रहा है। जिन एशियाई देशों की बड़ी आबादी खाद्य असुरक्षा और भूख के मुहाने पर खड़ी है वहाँ ये हालत और भी भयंकर नजर आती है। अब सवाल यह उठता है कि क्या यह पारिस्थितिकी कृषि और खाद्य संप्रभुता आधारित कृषि मॉडल इतना उत्पादन कर सकते हैं जो बढ़ती हुई आबादी के लिए पर्याप्त हो? इस सवाल का जवाब उन ढेर सारे उदाहरणों में ही छिपा है जो हमने पहले उल्लेखित किये हैं। एशिया के लगभग हर क्षेत्र में जैव–विविधता और टिकाऊ कृषि आधारित विकल्प उपलब्ध हैं। यह न केवल जलवायु परिवर्तन की समस्याओं के लिए भरोसेमंद समाधान देते हैं साथ ही हमारी खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए भी प्रभावी हल प्रस्तुत करते हैं।

जलवायु परिवर्तन के बढ़ते और विनाशकारी प्रभाव के कारण ज्यादातर किसान अपने खेतों और फसलों को जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों से बचाने के लिए खेती के वैकल्पिक तरीकों को अपना रहे हैं। इसका उद्देश्य सिर्फ अपने खेतों को जलवायु बदलाव के असर से बचाना ही नहीं है बल्कि संकर बीजों, रसायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों के इस्तेमाल से बचकर खेती की लागत को कम करना भी है। यह तरीके पारम्परिक खेती के प्रमुख हिस्से हैं। कर्नाटक राज्य रैयत संघ (के.आर.आर.एस.) की महिला किसान नेता और भारत के कृषि पारिस्थितिकीय विद्यालय, अमृत भूमि की संस्थापक चुक्की नंजुंडास्वामी ने कहा "जलवायु परिवर्तन का प्रभाव निश्चित रूप से किसानों को कृषि पारिस्थितिकी या खेती के अन्य वैकल्पिक तरीकों की ओर ले जा रहा है।[38] आज जलवायु परिवर्तन से निपटने में कृषि पारिस्थितकी, देसी बीजों की किस्मों और जैव विविधता वाली खेती के सकारात्मक असर सिद्ध करने के लिए सबूतों की कोई कमी नहीं है। सरकारों, खाद्य एवं कृषि संगठन (फूड एंड एग्रीकल्चरल ऑर्गेनाइजेशन, एफ़.ए.ओ.) जैसे अंतरराष्ट्रीय संस्थानों और खेती के व्यवसाय में शामिल कंपनियों के लिए किसानों की पारिस्थितिकी कृषि एवं खाद्य–सम्प्रभुता के महत्त्व को पहचानने और मानने का यही सही समय है। पारिस्थितिकी कृषि एवं खाद्य–सम्प्रभुता जलवायु बदलाव के असरों से निपटने में अहम भूमिका अदा करते है। सरकारों, बड़े–बड़े संस्थानों और कंपनियों को जलवायु स्मार्ट खेती जैसे झूठे समाधानों और झूठी तकनीकों को बढ़ावा देना बंद करने का यह बिलकुल सही समय है।[39]

पूरे एशिया के देशों में लोग स्व–निर्णय के अधिकार, सामुदायिक निर्माण और खाद्य संप्रभुता के आधार पर की गई पहल कदमियों से जलवायु संकट से निपटने के सही विकल्प सामने ला रहे हैं।[40] यह बहुत ही प्रेरणादायक और प्रभावशाली उदाहरण हैं लेकिन यह महत्त्वपूर्ण उदाहरण कहीं ऊँचे पदों पर बैठे लोगों के लिए केवल उनकी टेबलों पर होने वाली चर्चाओं तक सीमित न रह जाएँ, या उन्हें किसी दूसरी दुनिया का आकर्षक और दिलचस्प अपवाद भर न समझ लिया जाए। इन मिसालों को एशिया और बाकी दुनिया में एक योजनात्मक नक्शा बनना चाहिए जिसके सहारे हम सब औद्योगिक कृषि और कॉर्पोरेट लालच से बने इस भयंकर संकटग्रस्त समाज से बाहर निकल सकें।

End Notes

[1] Aon, "Weather, Climate & Catastrophe Insight—2019 Annual Report", 2019, http://thoughtleadership.aon.com/Documents/20200122-if-natcat2020.pdf?utm_source=ceros&utm_medium=storypage&utm_campaign=natcat20

[2] Aon, "Weather, Climate & Catastrophe Insight—2019 Annual Report", 2019, http://thoughtleadership.aon.com/Documents/20200122-if-natcat2020.pdf?utm_source=ceros&utm_medium=storypage&utm_campaign=natcat20

[3] Economic Survey 2017-18, Ministry of Finance, Government of India, Chapter 6 on Climate, Climate Change, and Agriculture, January 2018, New Delhi, https://mofapp.nic.in/economicsurvey/economicsurvey/pdf/082-101_Chapter_06_ENGLISH_Vol_01_2017-18.pdf

[4] SCMP Reporter, "Explained: how climate change will affect Asia", South China Morning Post, 11 March 2019, International, https://www.scmp.com/week-asia/explained/article/2189340/explained-how-climate-change-will-affect-asia

[5] Hijioka, Y., E. Lin, J.J. Pereira, R.T. Corlett, X. Cui, G.E. Insarov, R.D. Lasco, E. Lindgren, and A. Surjan, 2014, "Asia. In: Climate Change 2014: Impacts, Adaptation, and Vulnerability". Part B: Regional Aspects. Contribution of Working Group II to the Fifth Assessment Report of the Intergovernmental Panel on Climate Change [Barros, V.R., C.B. Field, D.J. Dokken, M.D. Mastrandrea, K.J. Mach, T.E. Bilir, M. Chatterjee, K.L. Ebi, Y.O. Estrada, R.C. Genova, B. Girma, E.S. Kissel, A.N. Levy, S. MacCracken, P.R. Mastrandrea, and L.L.White (eds.)]. Cambridge University Press, Cambridge, United Kingdom and New York, NY, USA, pp. 1327-1370. https://www.ipcc.ch/site/assets/uploads/2018/02/WGIIAR5-Chap24_FINAL.pdf

[6] Shuai Chen, Xia oguang Chen, and Jinta o Xu, "Impacts of Climate Change on Agriculture - Evidence from China", Environment for Development, Discussion Paper Series, March 2014, https://media.rff.org/documents/EfD-DP-14-07.pdf

[7] Flood deals a heavy blow to fish farmers, The Daily Star, Bangladesh, 29 August 2020, https://www.thedailystar.net/backpage/news/flood-deals-heavy-blow-fish-farmers-1952661

[8] ADMIN SPI, "209,884 hectares of South Kalimantan agricultural land submerged by floods! Threatened Food Sovereignty", Serikat Petani Indonesia, 24 January 2021, https://spi.or.id/209-884-hektare-lahan-pertanian-kalsel-terendam-banjir-kedaulatan-pangan-terancam/

[9] Farmers in 2020: Hit hard, yet resilient, The Daily Star, Bangladesh, 2 January 2021, https://www.thedailystar.net/frontpage/news/farmers-2020-hit-hard-yet-resilient-2020925

[10] Flood deals a heavy blow to fish farmers, The Daily Star, Bangladesh, 29 August 2020, https://www.thedailystar.net/backpage/news/flood-deals-heavy-blow-fish-farmers-1952661

[11] Shreeshan Venkatesh, Priya Ranjan Sahu, Anand Vattamannil, Appu Gapak, "India's climate quandary", Down to Earth, 15 March 2018, https://www.downtoearth.org.in/coverage/climate-change/not-adapting-to-change-59869

[12] Parth M.N., "Hailstorms at 43°C wreck farming in Latur", PARI, 29 August 2019, https://ruralindiaonline.org/en/articles/hailstorms-at-43-degrees-celsius-wreck-farming-in-latur/

[13] B. Chandrashekhar, "Untimely rain, hailstorm leaves standing crops damaged in 41,500 acres", The Hindu, 11 April 2020, https://www.thehindu.com/news/national/telangana/untimely-rain-hailstorm-leaves-standing-crops-damaged-in-41500-acres/article31319758.ece

[14] Dawn Report, "Rain, hailstorm damage crops, orchids in several districts", DAWN, 29 June 2020, https://www.dawn.com/news/1565832/rain-hailstorm-damage-crops-orchards-in-several-districts

[15] WION Web Team, "Locust attacks in Pakistan raise fear of massive food shortages", WION, New Delhi, 29 May 2020, https://www.wionews.com/south-asia/locust-attacks-in-pakistan-raise-fear-of-massive-food-shortages-301735

[16] Tamma A. Carleton, "Crop-damaging temperatures increase suicide rates in India", PNAS, 31 July 2017, https://www.pnas.org/content/114/33/8746

[17] Yashobanta Parida, Devi Prasad Dash, Parul Bhardwaj and Joyita Roy Chowdhury "Effects of Drought and Flood on Farmer Suicide in Indian States: An Empirical Analysis", July 2018, Economics of Disasters and Climate Change, https://www.researchgate.net/publication/320443023_Effects_of_Drought_and_Flood_on_Farmer_Suicide_in_Indian_States_An_Empirical_Analysis

[18] GRAIN, "Food and climate change: the forgotten link", GRAIN, 28 September 2011, https://www.grain.org/e/4357

[19] "False Promises: The Alliance for a Green Revolution in Africa (AGRA)" by Biba (Kenya), Bread for the World (Germany), FIAN Germany, Forum on Environment and Development (Germany), INKOTA-netzwerk (Germany), IRPAD (Mali), PELUM Zambia, Rosa Luxemburg Stiftung (Germany), Tabio (Tanzania) and TOAM (Tanzania), June 2020, https://www.rosalux.de/fileadmin/rls_uploads/pdfs/Studien/False_Promises_AGRA_en.pdf

[20] Outsmarting Nature: Synthetic Biology and Climate Smart Agriculture by ETC Group & Heinrich Böll Stiftung, November 2015, https://www.boell.de/sites/default/files/2015-11-outsmarting-nature-synthetic-biology.pdf

[21] "Outsmarting Nature: Synthetic Biology and Climate Smart Agriculture", ETC Group & Heinrich Böll Stiftung, November 2015, https://www.boell.de/sites/default/files/2015-11-outsmarting-nature-synthetic-biology.pdf

[22] "GM Technology is Essential for Climate Smart Agriculture", 12 August 2015, https://www.isaaa.org/kc/cropbiotechupdate/article/default.asp?ID=13651

[23] Mark Lynas, "Major UN report endorses "climate-smart" biotech crops, Cornell Alliance for Science", 19 October 2016, https://allianceforscience.cornell.edu/blog/2016/10/major-un-report-endorses-climate-smart-biotech-crops/

[24] GRAIN, "The Exxons of agriculture", 30 September 2015, https://grain.org/e/5270

[25] Tim J. LaSalle and Paul Reed Hepperly, "Regenerative Organic Farming: A Solution to Global Warming," January 2008, Rodale Institute, https://www.researchgate.net/publication/237136333_Regenerative_Organic_Farming_A_Solution_to_Global_Warming

[26] Basudev Mahapatra, "How India's Indigenous Farmers Are Successfully Resisting Climate Change", 10 September 2019, Earth.org, https://earth.org/how-indias-indigenous-farmers-are-successfully-resisting-climate-change/

[27] Gopi Karelia, Potatoes From Paddy: Odisha Farmer's Idea Saves 80% Water, Prevents Stubble Burning, 14 January 2021, The Better India, https://www.thebetterindia.com/odisha-potato-farming-paddy-straw-technique-how-to-stubble-burning

[28] मासिपैग ऐसे जन–संगठनों, स्वयंसेवी संगठनों और वैज्ञानिकों का नेटवर्क है जो आनुवांशिक एवं जैविक संसाधनों, कृषि उत्पादन और उससे जुड़े ज्ञान पर किसानों के नियंत्रण के माध्यम से जैव विविधता के टिकाऊ इस्तेमाल हेतु कार्यरत हैं। इसका नेतृत्व भी किसानों के द्वारा किया जा रहा है।

[29] MASIPAG National Office "Amidst Crisis, Farmer-Scientist group launch Climate-Resilient Rice Varieties", Los Banos, Laguna, Philippines, 14 September 2019.

[30] "Building Resilient Community Managed Seeds System Towards Climate Change Adaptation", Project Location-Cambodia and Philippines, Project Duration 2013-2015, https://www.searice.org.ph/building-resilient-community

[31] GBSNP VARMA, "Seed Savior", Earth Island Journal, SPRING 2014, https://www.earthisland.org/journal/index.php/magazine/entry/seed_savior/

[32] Shreya Dasgupta, "In the Sundarbans, rice grains from the past are helping face weather storms of the future", Scroll.in, 13 February 2016, https://scroll.in/article/803413/in-the-sundarbans-rice-grains-from-the-past-are-helping-face-weather-storms-of-the-future

[33] "India's 'Seed Warrior' Builds Living Seed Banks to Preserve Agricultural Diversity", https://foodtank.com/news/2020/04/indias-seed-warrior-builds-living-seed-banks-to-preserve-agricultural-diversity/

[34] गाय का गोबर तथा कुक्कुट अपशिष्ट को आमतौर पर जैविक खाद की तरह इस्तेमाल किया जाता है लेकिन इसे और असरदार बनाने के लिए इन दोनों को ही बायोगैस संयंत्र में बायोगैस बनाने के लिए इस्तेमाल करते हैं और बचे हुए कचड़े का खाद की तरह उपयोग किया जाता है।

[35] "Action for climate change adaptation", IDCRC, http://www.drcsc.org/resources.html

[36] पूर्वी और पश्चिमी मेदिनीपुर, पुरुलिया, बीरभूम और 24 परगना पश्चिम बंगाल के जिलों में।

[37] Indigenous Peoples and climate change adaptation in Asia, Asia Indigenous Peoples Pact (AIPP), 2012, https://www.iwgia.org/images/publications/0656_IPs_and_Climate_Change_Adaptation_in_Asia.pdf

[38] अमृत भूमि कर्नाटक के चामराजनगर में स्थित भारत का पहला कृषि–पारिस्थितकी विद्यालय है।

[39] ग्रेन के साथ व्यक्तिगत संपर्क में प्राप्त सूचना।

[40] *ला वाया कैंपेसिना* द्वारा माली में 2007 में आयोजित फोरम फॉर फूड सॉवरेनिटी में अपनायी गई न्येलेनि घोषणा के अनुसार खाद्य सम्प्रभुता लोगों का ऐसा अधिकार है जिससे वो न्यायपूर्ण और पारिस्थितकीय तौर पर सही और टिकाऊ तरीकों से उत्पादित किये स्वस्थ और सांस्कृतिक रूप से उचित भोजन पर अपना अधिकार पाते हैं। साथ ही इस अधिकार के तहत वे अपने भोजन की परिभाषा तथा खेती की पद्धति स्वयं तय करने का अधिकार भी पाते हैं। इससे बाजार की और कंपनियों की जरूरतों के बजाए उन लोगों की आकाँक्षाओं और जरूरतों को स्वर मिलता है जो भोजन उत्पन्न करते हैं, वितरित करते हैं और स्वयं उपभोग करते हैं, जो खाद्य प्रणालियों और नीतियों के केंद्र में होते हैं। खाद्य सम्प्रभुता में स्थानीय और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं व स्थानीय व राष्ट्रीय बाजारों को प्राथमिकता दी जाती है ... ऐसे पारदर्शी व्यापार को बढ़ावा दिया जाता है जो सभी लोगों के लिए न्यायपूर्ण आमदनी के साथ भोजन और पोषण पर उपभोक्ताओं के नियंत्रण के अधिकार को सुनिश्चित करे।

ग्रेन एक अंतरराष्ट्रीय अलाभकारी संगठन है जो छोटे किसानों और सामाजिक आंदोलनों को जैव विविधता आधारित और समुदाय नियंत्रित भोजन व्यवस्था के लिए उनके संघर्षों में सहयोग करता है। ग्रेन प्रत्येक वर्ष बहुत सी रिपोर्ट निकालता है जो दिए हुए विषयों पर गहरे स्रोत के दस्तावेज होते हैं और प्रामाणिक पृष्टभूमि के साथ विषय का विश्लेषण उपलब्ध कराते हैं।

ग्रेन की रिपोर्टों का पूरा संकलन हमारी इस वेबसाइट पर प्राप्त किया जा सकता है–
http://www.grain.org

GRAIN
Girona 25 pral., 08010 Barcelona, Spain
Tel: +34 93 301 1381
Email: grain@grain.org